मेरी कविताएँ

रचनाकार: सुधांशु कुमार मिश्र
प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग
नार्थ-ईस्टर्न हिल विश्वविद्यालय
शिलांग, मेघालय (भारत) - 793022
इ-मेल: mishrasknehu@gmail.com

पहिये

हम टायर लगे पहिये हैं
जो अपने फेंफड़ों में दम रोके
जेठ की धूप में
तवे सी जलती ऊबड़ खाबड सड़कों पर दौडते
गाड़ी को सर पर लिए
चार गधों को
जिसे सवारी कहते हैं
मुक़ाम के क़रीब तक ले जाने के लिए ही
जी रहे हैँ।

नहीं जानते, कब, कहाँ और किस वज़ह से
हम में से एक
पंक्चर हो जाएगा,
दम तोड़ देगा
बीच सड़क पर
वहां
जहाँ से सवारियों के मुक़ाम
बहुत, बहुत दूर हों
और
पंक्चर बनाने वाले की दूकान
ढूंढे न मिलती हो।

प्रभु, ऐसा न होने देना
शंकर, तेरा सहारा
बुरे का हो मुँह काला
फ़िर मिलेंगे।

दा जू

दाजू, इन्हें गाड़ी पर लाद दो

इतनी सब्जी का क्या करोगे बाबू ?
तुम्हें इससे क्या?
बस लाद दो, कहा न ।

सर जी, मुझे ये कोर्स लेने हैं.
अरे, इन कोर्सेस से क्या होगा फ़ायदा ?
इससे क्या, सर जी, मतलब आपका ?
मुझे ओपन कोर्सेस चुनने की फ़्रीडम है ।

दाजू ने सुन लिया
दाजू ने कर दिया
दाजू रोज़ करता है काम बाजार में,
लेकर मज़दूरी ।

जंगल

मेरी छाती पर उगते हैं रोज़
बिरवे (नयी - नयी कामनाओं के)
बहुतेरे हो जाते हैं अकाल काल कवलित
और कुछ बढ़ कर पेंड हो जाते हैं
और कुछ दूसरे
थककर नभ छूने के निरन्तर प्रयास से,
ज़मीन से दूर हटते हटते,
धराशायी हो जाते हैं
देखता रहता हूँ मैं
क्रम आवागमन का
मैं तो जंगल हूँ।

मुझमें बसते हैं बाघ, भालू
और न जाने कितने दरिंदे
किसी स्याह खोह में
लटके रहते हैं असंख्य चमगादड़
ठेंगे पर ऊँचाई और जूती पर आसमान;
मुझमें बसते हैं हजारों खरगोश
धवल, निरीह, कोमल और चंचल
स्नेह की खिलती धूप की तरह;
मैं सबको जानता हूं
मैं तो जंगल हूँ।

रोज़ कटते हैं मेरे हरे - हरे पेंड
मेरी जानकारी में होती है पोचिंग
कुछ दाँत, सींग और चमड़ों के लिये
मेरे हिरनों के लिये
बाघ हैं, चीते हैं, भेंड़िये हैं
और सबसे ऊपर आदमी हैं
भूखे, आक्रामक, निर्दय लोभग्रस्त
मैं दुआ माँगता हूँ उस चंचल छौने के लिए
जो कुछ नहीं समझता
पर जिसकी नर्म चमड़ी से बनी जूतियां
मुंहबोले दाम पर बिकती हैं
इसके सिवा क्या कर सकता हूँ मैं?
मैं तो जंगल हूँ।

अंतर्व्यथा

मैं एक पर-टूटा पाँखी हूँ,
गिरा हुआ दरिया की लहरों में।

किश्ती जो पास से निकलती है,
नाविक जो पार्श्व से गुज़रता है,
"लहरो से जूझो" कह जाता है।

जितने ही दम-खम से
डैनों को तौलता हूँ ऊपर मैं,
उतने ही ज़ोर से डूब खा जाता हूँ ;
मैं हूँ 'हर क्रिया की समान और प्रतिकूल प्रतिक्रिया' का शिकार
बाकी पाँखी तो हैं चाहते उड़ना,
और झट उड़ जाते हैं।

जिधर ये लहरें ले जाती हैं,
उधर है वारिधि अनंत पड़ा।
कभी थे दरिया और दो पाट,
अब हर एक पाट दरिया बन गया है;
हर दरिया दो दरियों के पाट लिए बैठा है।
फिर भी लोग कहते हैं कि
बचना हो, तो रुख करो किनारे की।

इंसान मरता है तो मातम मनाते हैं
क्योंकि वह मरता है वहां
जहाँ उसके ही जैसे बहुत-से इंसान हैं।
मैं मरूँगा किसी बीहड़ में, खाड़ी में,
ऊपर अनंत गगन, नीचे निःसीम सिंधु।

दूर, बहुत दूर,
किसी छोटी-सी झाड़ी में
हर आहट-हरक़त पर
चीं-चीं कर मुँह खोले
कुछ नन्हें बच्चे
एक आस लिए बैठे हैं।

मैं अपनी मौत पर आँसू बहाऊँगा,
खुद अपनी मौत पर मातम मनाऊँगा,
क्योंकि छोड़ जाऊँगा बच्चों को वहाँ
जहाँ बिल्ली और लोमड़ी
ताक लगा बैठी हैं
मौसी और नानी के चेहरों में।

मैं एक पर-टूटा पाँखी हूँ,
गिरा हुआ दरिया की लहरों में।

शाम सहसा ढल गयी है

धूप ओझल हो गयी है।

जो जहाँ हैं, लौटने को हो रहे तैयार
काम का वैसे पड़ा है सामने अंबार
अब करेंगे, अब करेंगे, हो गयी दुपहर
सोचने में और गुजरा एक अन्य प्रहर।

डूबने को जा रहा मसि-सिंधु में संसार
मच्छरों की फ़ौज़ है उन खिड़कियों के पार
हैं वहीं टकरा रहे चमगादड़ों के पर
गूँजते हैँ हर तरफ बस झींगुरों के स्वर।

ऊँघते उल्लू जमे हैँ शाख पर हर ओर
उस तरफ से आ रहा है शावकों का शोर
दूर तक दिखता नहीं है रौशनी का श्रोत
कर सकेंगे राह रौशन ये निरे खद्योत ?

शाम सहसा ढल गयी है।

मत करो किसी का इंतज़ार

ओ शिशिर-शीर्ण निष्पर्ण वृन्त,
बिखरे, वीणा के भग्न तार,
खँडहर अतीत प्रासादों के,
किसका, क्यों, करते इंतज़ार ?

हो किसी विजन प्रांगण में स्थित
चिर-स्वप्निल प्रेमी की मज़ार,
धूसरित, उपेक्षित, खग-विष्ठित,
किसका, क्यों, करते इंतज़ार ?

दूध-से धवल ज्योत्स्ना-शीतल
एक मसृण दुपट्टे में सँवार,
आएगी कोई दीप लिए
करते क्या उसका इंतज़ार ?

भूल जा, दोस्त, भ्रम छोड़, यार,
शब्दाडंबर हैं, स्नेह, प्यार,
तुम हो अतीत, तुम हो विराम,
मत करो किसी का इंतज़ार।

बोल, तेरी उँगलियाँ पकड़े कहाँ तक मैं चलूँगा ?

बोल, तेरी उँगलियाँ पकड़े कहाँ तक मैं चलूँगा ?

देख दूर अतीत में, गन्तव्य जब कोई नहीं था,
राह जब कोई नहीं थी, साथ जब कोई नहीँ था,
झाड़ियों की ओट से तुम आ गए बन कर सहारा,
और बोले, सोच मत, तेरे लिए तो मैं यहीं था,
साथ मिलकर ढूँढ लेंगे किस तरफ मंज़िल हमारी,
रात जब आया करेगी दीप बनकर मैं बलूँगा।

रात आयी, हाँ, दिया बनकर किया तुमने उजाला
पाँव जब फिसले, बढ़ाकर हाथ, हाँ, तुमने सँभाला,
थक गया जब, फेर सर पर हाथ, हाँ, तुमने सुलाया,
जब उषा आयी, पुकारा प्यार से, मुझको जगाया,
फिर चले हम, क्या पता था, मैं जिसे मंज़िल समझता
मात्र एक सराब है, जिसको नहीं मैं छू सकूंगा।

है नहीं मंज़िल अगर, तो पथ सभी हैं एक जैसे,
भटकना, जाना, सफ़र करना, सभी हैं एक जैसे,
और, रुकना, याकि फिर मुड़कर कहीं से लौट चलना,
लौट चलना भी कहाँ ? अब चाहता कुछ भी न कहना,
हम कहाँ तक आ चुके हैं पूछ कर भी क्या करूँगा ?
बोल, तेरी उँगलियाँ पकड़े कहाँ तक मैं चलूँगा ?

मेरा घर है कारागार

आगे लोहे के दरवाजे
पीछे पथ्थर की दीवार
दाँये बाँये अंधी गलियाँ
मेरा, बस, इतना संसार।

रात और दिन क्या होते हैं ?
क्या नभ का आकार-प्रकार ?
हवा,. बता दे, कैसा लगता
इन दीवारों के उस पार।

वर्ष, महीने, दिन न गुजरते
फिर क्या उम्र गुजरती है ?
जीवन, मृत्यु, निराशा, आशा
केवल शब्दों का व्यभिचार।

हँसना, रोना, कहना, सुनना,
सोने, जगने का व्यापार
अर्थहीन मेरे हित सब कुछ
मेरा घर है कारागार।

आज कर लें गुफ़्तगू जी खोल कर

बोझ दिल पर था ज़माने से पड़ा
आज वह हलका करें कुछ बोल कर

घूँट पीकर भी ज़हर का, बोलते
बात अपनी चाशनी में घोल कर

शिद्दतों में जिंदगी गुज़री, मग़र
उफ़ नहीं कहते बना मुँह खोल कर

आँसुओं में रात ग़र कटती रहे
क्यों रखें सबंध ऐसे जोड़ कर

आसमाँ की कहकशाँ को मैं चला
दर्द सारे इस ज़मीं पर छोड़ कर

क्या बताएँ हम कि कल होंगे कहाँ
आज कर लें गुफ़्तगू जी खोल कर

मृत्युदेव आने वाले हैं

मेरा इतना भाग्य, धरा पर
नभ ने आने को सोचा है !
मुक्त करा कारा से मुझको
लेकर जाने को सोचा है !

इतनी कृपा ! कहाँ थे अब तक !
नाहक़ इतनी देर लगायी !
लगता है, आवाज़ हमारी
उन तक, पहले, पहुँच न पायी !

देव दयामय की आगवनी
मैं दरिद्र क्या कर पाऊँगा ?
मैं मिट्टी का, वे तेजोमय
कैसा अर्चन कर पाऊँगा ?

क्या नैवेद्य चढ़ाऊँगा मैं ?
मैं तो एक अकिंचन नर हूँ !
मेरा सब कुछ मिटटी का है
मैं निर्धन, निरीह, कातर हूँ !

हाँ, अब आया याद, हमारा
कुछ भी नहीं प्राण सा निर्मल
क्यों न इसे नैवेद्य चढ़ाऊँ
यही बने अर्चन का सम्बल !

आओ, प्रभु, मैं विगतमोह हूँ
तेरी पूजा कर पाऊँगा।
तेरे चरणौं में छोटी-सी
भेंट प्राण की रख पाऊँगा

अब मैं खुश हूँ, अभिनन्दन है !
सारे दुख जाने वाले हैं।

मृत्युदेव आने वाले हैं।

रबीन्द्रनाथ की एक कविता से अनुप्राणित

बाबा ब्लैक शीप

मेरी नन्हीं-सी पोती ने
स्कूल से आते ही मुझसे पूछा,
बाबा, बताऊँ कुछ ?
आज मुझे स्कूल में सिखाया जो
सुनाऊँ कुछ ?

मैंने कहा,
हाँ, हाँ, क्यों नहीं,
क्या तुमने सीखा,
तेरी ज़ुबानी,
सुनें तो सही।

थोड़ा तुतलाते हुए
फ़िर उसने गाया
राइम वह, जिसने,
एक नहीं, सैकड़ों,
पेरेंट्स को लुभाया

बा बा ब्लैक शीप
हैव यू एनी वुल
यस सर, यस सर
थ्री बैग्सफुल,
वन फॉर माय मास्टर ...

राइम सुना कर वह भाग गई
मेरी अधिविज्ञता, पर, जाग गई।

हाँ, हाँ, बाबा ज़रूर ब्लैक शीप है।

बरसों खा आधा पेट
फटे कम्बल पर लेट
उसने उगायी वुल
तीन नहीं, पाँच नहीं,
अनेकानेक बैग्सफुल।

बक़ौल धूमिल के,

बाबा की उम्र और बोझ से
झुकती और दुखती पीठ पर
उसके कमाए हुए
एक नहीं, अनेक
ऊन के हैं गट्ठर।

वह सब ग़र बेटों के लिए
शान-ओ-शौक़त का
सस्ता ईंधन न हो,

- जो माँगें, दे दें
एक पाई कम न हो -
तो बुड्ढा चीप है
ज़रूर ब्लैक शीप है।

ऊमस

कोलाहल, वह अट्टहास, वह स्मित-अपनापन,
वह मिलना, वह चौक, वहां घंटों बतियाना,
वे इतवार, धूप में सिकना, चाय पकौड़े,
एक हवा के झोंके से सब बिखर गए क्या,
या, सारे रिश्ते केवल छिछले, सतही थे ?

धूप सहमकर किसी शाख पर जा चिपकी है
श्यामल बादल थके-थके, नभ के कोनों में
लाल हुए जा रहे विफलता की ब्रीड़ा से
हवा अधर पर उंगली रख कर मौन हो गयी
यह ऊमस, बेबसी, कहाँ से आ टपकी है !

अब तो मर जाने में

अब तो मर जाने में गम नहीं, अफ़सोस नहीं
मौत जो भी हो तुम, अहद-फ़रामोश नहीं।

जिंदगी एक बियाबां में सफ़र था लम्बा
ना मिला साथ तो औरों का कोई दोष नहीं।

लम्बी तन्हाई जिया, अब तेरा साथ मिला
औरों से है कमतर तेरा आगोश नहीं।

वो, जो नम आँखों से देख रहे हैं मुझको,
यार फ़रेबी हैं, मगर उन पै मेरा रोष नहीं।

होश में सेज पै काँटों के जिया मैं ताउम्र
मैं बहुत खुश हूँ, मुझे अब रहेगा होश नहीं।

अब तो मर जाने में गम नहीं, अफ़सोस नहीं
मौत जो भी हो तुम, अहद-फ़रामोश नहीं।

सर झुकाने के सौ बहाने हैं

उनके होठों से गालियाँ झरतीं,
हमारे होठों पै तराने हैं।

चाहते, वो कहें कि ये कर दो,
हुक्म लेने के हम दीवाने हैं।

झूठ हो, सच हो, बदगुमानी हो,
हमें, बस, हाँ में हाँ मिलाने हैं।

ख़ुद को नौकर कहें, मगर उनका,
इसी ग़फ़लत में हम सयाने हैं।

उनके जूतों की छाँह में अपने
शब-ए-लज़्ज़त के आशियाने हैं।

जोड़ते हाथ पत्थरों को भी,
हमारे होश क्या ठिकाने हैं।

हमारे ख़ून में ग़ुलामी है,
सर झुकाने के सौ बहाने हैं।

सर्द जज़्वातों से यूँ मत खेलिये

हम गुनाहों की गली में चस्प हैं,
आप क्यों हैं रंज? हैं तो झेलिये।

है नसीहत आपकी बेशक़ भली,
उसके मानी कुछ न औरों के लिये।

नालियों में हम पड़े हँसते तो हैं,
उम्र भर रोते जिये तो क्या जिये।

जिसने भी ज़द्दोज़हद की उम्र भर,
आज ख़ुद ही तोलिये, क्या कर लिये।

रौशनी नंगा दिखाये ग़र हमें,
फ़ायदे क्या हैं जलाने के दिये।

ज़र्द हो वे टहनियों से गिर गये,
सर्द जज़्वातों से यूँ मत खेलिये।

तब्दील हुए मंजर, पैग़ाम वही है

पाला भरम कि रात लाएगी नयी सुबह,
पर मुफ़लिसी के दौर सुबहोशाम वही है।

हर कश्मकश का आख़री ज़बाब एक सा,
हिक़मत तो है बदल रही, अंजाम वही है।

सूरज है सर पै तप रहा, भट्ठी बनी जमीं,
जो नाम दें, क़ुबूल, मग़र काम वही है।

हर चीज़ के हैं मोल आसमान छू रहे,
दिन-भर के पसीने का, मगर, दाम वही है।

हाँ, आप से बदल के वो हुज़ूर बन गए,
हम तुम से तू बने, हमारा नाम वही है।

मुंसिफ़ बदल गए हैं, अदालत बदल गयी,
कानून वही है, सर-ओ- इल्ज़ाम वही है।

चीतों की ज़गह भेंड़िये, पर भेड़ के लिए
तब्दील हुए मंजर, पैग़ाम वही है।

बस्ती शुकून की बसाएगा आदमी

दानवीय या मानवीय,
बढ़ गए धरती पर अत्याचार,
भीषण प्रलय आया,
दिखता नहीं था जलराशि का आर-पार,
सृष्टि की नाव फँसी जलधि के मँझधार।
बन कर एक मछली
प्रभु ने लिया प्रथम अवतार।

हममें से कुछ
मछली खाते हैं डटकर,
और कुछ करते हैं
उसकी बू से नफ़रत ।
खाने में स्वाद और छूने में नफ़रत
यही है भले आदमी की फ़ितरत ।

सोचा उन्होंने,
चलो, करते हैं प्रयास फिर एक बार
आ गए लेकर कच्छप अवतार ।
तब से भला आदमी
जितना रहता है पानी के अंदर
उतना ही रहता है पानी के बाहर
चित भी उसकी और पट भी उसका
जीते, तो आपका; हारे, तो खिसका ।

प्रभु ज़िदिया गये
वराह अवतार लेकर फ़िर आ गये ।
आदमी में अंतर नहीं आया ।
किसी ने की नफ़रत,
किसी ने बड़े चाव से खाया ।

खाए जाने की अनुभूति से ऊबकर,
गहरे चिंतन में प्रभु ने डूबकर,
धारा एक अनोखा रूप, इस बार,
आधे में बबर शेर, आधा मनुष्याकार।
तभी से बब्बन सिंह फाड़ रहे ग़रीबों की छाती,
या, उस बेबस मजदूरन की साड़ी
जो करती खेत में काम, लेकर दिहाड़ी ।

प्रभु फ़िर लौटे ले वामन अवतार ।
तब से यहाँ होती है
धोख़े की जीत और दरियादिली की हार ।

अगले अवतार में प्रभु आये बन परशुराम
पंडितों को पकड़-पकड़ दे दी धरती तमाम।
तभी से हर भला आदमी
यूँ बैठा खाता है,
अनाज़ किसी और से पैदा करवाता है,

सुबहोशाम बस नाक भर दबाता है,
महरी से जूठे पत्तल उठवाकर,
या फिर रात में पैर दबवाकर ।

प्रभु ने सोचा
कि सत्ता में घुस कर
सत्ता को बदलना है;
बन के श्रीराम
त्रेता युग में निकलना है ।
लेकिन जब तलक
अपनी कमज़ोरी को
वरदान बतलाने की
ज़िंदा रहेगी ललक,
कोई एक कैकयी
तुम्हेँ भेज सकती है
जंगल के उस पार
लो, कर लो सुधार !

अपनी खड़ाऊं तक घर छोड़ जाओ,
काँटों-भरी राह पर ख़ुद तो चलो ही,
दूसरों को भी चलाओ ।
हम तेरे राज्य को, बेशक तुम्हारे हित, खुद संभाल लेंगे
पादुका पूजेंगे, और कंधे पर अपने
एक रामनामी तूश की बेशकीमती शाल भी डाल लेंगे ।

प्रभु ने सोचा, अब ऐसे नहीं होगा
एक महाभारत करवाना ज़रुरी है
इसके बाद ही सबकुछ सही होगा ।

बाँसुरी बजायी और राधा को रिझाया
मक्खन खा-खा कर महाभारत करवाया,
दुष्टों के चंगुल से अवाम को छुड़ाया ।

तभी से भले लोग,
बाँसुरी बजाते हैं
मालपुए खाते हैं
राधा को रिझाते हैं
भाइयों के बीच
महाभारत करवाते हैं ।

यह सब देख कर प्रभु हो गए तंग
दुनिया है तैर रही जैसे हो कटी पतंग
उसकी पकड़ने इठलाती डोर
सुख, शुकून, नाते व रिश्ते तोड़
बन गए तथागत,
दलितों की ताक़त ।

लेकिन यह दुनियाँ है
उनसे भी अधिक समझदार
इसका न जान सके

ईश्वर भी आर–पार ।

बक़ौल बच्चन

बुद्ध का जैसा और जो भी हो उपदेश,
आज उनकी मूर्तियों के सर पर घुँघराले केश
वे ड्राइंग रूम्स की शोभा बढ़ाते हैं
भले लोग संघ की शरण में न जाते हैं
वे तो राष्ट्रसंघ को उँगलियों पर नचाते हैं ।

भगवान ने कर ली तौबा यहाँ आने से
आदमी न मानेगा मेरे समझाने से ।
वे किसी और को तभी से हैं भेज रहे
लेटे शेषशय्या पर सपने सहेज रहे,
आज न तो कल सुधर जायेगा आदमी
बस्ती शुकून की बसाएगा आदमी ।

लेकिन आदमी !

आदमी बदले की भावना से ग्रस्त है
जलते दिल से उठते धुएँ से त्रस्त है।

कैसा वह बाप है, जो घर से निकाल दे,
तिल जैसी ग़लती को ताड़–सा आकार दे,
अपने ही बाग़ का एक सेव खाया था
कौन बड़ी खता हुई, हीरा चुराया था?

आज आते बार–बार अपना गीत गाने को
बेटा जो भटक चुका, उसको समझाने को,
शायद वो अपने ही किये पर पछताते हैं,
पर क़ुबूल करने से, बेशक़ सरमाते हैं।

आते रहें, जाते रहें, कौन मना करता है,
स्याह या सुफ़ेद हो, अब कौन यहाँ डरता है।

चादर–चुनरी के दाग आँसुओं से धो लेंगे

हम तो हुए राख सनम,
अब तुम्हें जलाएंगे
बाग़ के दो झुरमुटों में
तनहा, गीत गाएंगे।

कोयल की कूक में
तुम अपनी व्यथा भर देना
बाग के हर कोने को
आह–ए–हिज्र कर कर देना।

पिहू–पिहू रटकर मैं
तुम्हें याद कर लूंगा
चाँद की खूँटी पर
टांग प्राण, मर लूंगा।

सात जनम साथ नहीं
हँस सके, तो रो लेंगे
चादर–चुनरी के दाग,
आँसुओं से धो लेंगे।

ममता की रेखा

1
लो, सुनो, आज ममता की एक कहानी,
मैंने बचपन में था गवाक्ष से देखा।
थी कौन न पूछो, थी जानी-पहचानी,
उसकी यादों की अमिट हृदय पर रेखा।
2
नत-मस्तक, नयन निमीलित, झरते सीकर,
है खड़ी, स्यात्, करती प्रभु नामोच्चारण,
सद्योस्नाता, वह भीगे वसन, कुएँ पर,
अस्फुट स्वर में, करती-सी व्यथा-निवेदन।
3
दीपक, बाती, माचिस ले उड़े प्रभंजन,
हर कोने पर तम का सचेत पहरा है।
कर सकता है क्या स्नेह स्वतः आलोकन ?
मेरे जीवन का अंधकार गहरा है ।
4
जब अविरल सारी रात बरसते बादल,
आकुल सूखी धरती की प्यास बुझाने,
चूते छप्पर के नीचे फैला आँचल
बैठी मैं, बच्चों पर चंदोवा ताने ।
5
फ़ाक़े पर फ़ाक़ा, अन्न नहीं है घर में
निर्वस्त्र नहीं, पर नग्न-प्राय हैं सारे ।
नर हार चुका है रोटी के संगर में
कर आँखें बंद पड़ा है एक किनारे।
6
तुम भूल न जाना उन वचनों के बंधन !
मेरे हित सारी धरा शून्य सम्प्रति है,
नर से निराश नारी का क्या अवलंबन !
नारायण तेरे बिन मेरी क्या गति है ?

रोजी

उस रात भी मेघ
यूँ ही घिर आए थे
ऐसा ही झंझावात
चतुर्दिक मसिस्नात
किन्तु, कहने को कि रहना सतर्क,
अब कोई रहा तर्क नहीं।

वृक–व्याघ्र भीति
मेषमाता की नियति है।
अपहृता होने की भ्रान्ति
सूनापन, या अशांति
क्रंदन या आर्तभाव,
गोद की विकृति है।

उसे रख तुमने दिया
अपने अंक से निकाल
कर वस्त्रावेष्ठित, सँभाल,
धात्री की गोद में
जो है महीयसी, माँ की भी माँ
और स्वर्गादपि गरीयसी।

जिस आँचल की छाँह
अंतक की भी पनाह
नतशिर, सम्पुटकर है
काल जिनकी शास्ति मान
अब उनकी गोद से
उसे छीनेगा कौन ?

चलते रहें झंझावात,
बरसते रहें ये मेघ
करते अविकल प्रपात,
दामिनी तड़कती रहे,
ज्यों करती अट्टहास,
यामिनी त्रियामा बने
चाहे, शतयामा बने
रुत ग्रीष्म, पावस बने
शिशिर या अनामा बने।

वात से अशोष्य हो,
प्रपात से अमेह्य हो,
दामिनी–अदम्य हो,
प्रकाश से वरेण्य हो,
खेलती उषा के संग,
हँसती कलियों के रंग,
रोजी अब प्रकृति है
अश्रु–सिक्त स्मृति है।
––

राम, मैं तेरे हृदय की ऊर्मियों को जानता हूँ

राम, मैं तेरे हृदय की ऊर्मियों को जानता हूँ,
अंशतः, पूरा नहीं तो, मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

थी सपत्नी–दंश से व्याकुल निरंतर माँ तुम्हारी,
एक खूँटे से बँधी थी गाय जैसी वह बिचारी,
दूर कोने में भवन के जी रही एकांत जीवन,
एक तेरे आसरे पर ही टिके थे प्राण, तन, मन,
मौन तुम थे देखते, तेरे अधर स्मिति ढो रहे थे,
जानता हूँ मैं, प्रफुल्लित नैन से तुम रो रहे थे।

वह करुण स्मिति हर हृदय पर छाप अपना छोड़ती थी,
एक सरिता में हृदय के उत्स सारे जोड़ती थी,
सोचते थे लोग, तुम राजा बने तो हर्ष होगा,
हर गिरे, भूखे, प्रपीड़ित व्यक्ति का उत्कर्ष होगा,
तुम व्यथा का अर्थ अपने अनुभवों से जानते थे,
लोकहित में त्याग को कर्तव्य अपना मानते थे।

एक आँधी आ गयी, जब बात आगे बढ़ रही थी,
स्वार्थपर षड्यंत्र तब तेरी विमाता गढ़ रही थी,
लोग थे अनभिज्ञ, पर तुम बात सारी जानते थे,
इसलिये भूकंप के पदचाप को पहचानते थे,
कर सके अम्लानमुख स्वागत नियति का तुम इसी से,
ले सके वनवास का तोहफ़ा अनोखा तुम ख़ुशी से।

पर, सहन क्या कर सका जनमत भरत का भूप होना
एक कुटिलापुत्र का श्रीराम, या प्रतिरूप, होना
आग थी सारी अयोध्या, ऊर्मिमय विप्लव स्फुटित था
टहनियों पर पेड़ के आक्रोश भीषण पल्लवित था
भाग कर आया भरत लेने दवा उस ज्वार का था
ठीक कहता था लखन, आना नहीं वह प्यार का था।

जानते थे तुम कि जनता मान तेरी बात लेगी
तुम अगर सन्देश दोगे, तो, भरत का साथ देगी।
पादुका भेजी भरत सँग, थी वही संदेश तेरा,
थी वही निर्देश तेरा, थी वही आदेश तेरा।
और क्या था अन्यथा जो हो सके सन्देश संबल,
त्याज्य अब कुछ भी नहीं, बस, तन ढँके था एक वल्कल।

राम, सोने की बनी थी पादुका, क्या सच यही है?
साथ वल्कल का कनक से, बात यह जमती नहीं है।
क्या भरत, तज कर कनक को, काष्ठपूजा में निरत था?
क्या कनक के पीठ पर रख काष्ठ, प्रभुता से विरत था?
सच यही है, पादुका प्रतिरूप ढल कर बन गयी थी,
राम की ही पादुका है, किंवदन्ती चल गयी थी।

अस्तु, नंगे पाँव तुम आगे चले, जंगल सघन था,
वीथियां कंटकमयी, दुस्साध्य ही आवागमन था ।
मृत्तिका में रंग भरते पाँव तेरे छिल गये थे,
छाप पग के पत्थरों पर फूल जैसे खिल गये थे।
रक्त से क्राँरी धरा ने मांग अपनी थी सजायी,
पक्षियों ने गान गाये, वायु ने बंशी बजायी ।

इस अनोखे व्याह पर सीता कभी कुछ भी न बोली,
कौन जाने, याकि करती हो अकेले में ठिठोली,
प्रण किया था तुम न दोगे सौत की सौगात लाकर,
हो महल या वन, रखोगे तुम उसे रानी बनाकर।
क्या इसीसे जंगलों की ख़ाक तुम यूँ छानते थे,
और भूपति यदि बने, प्रण-भंग होगा, मानते थे ?

ख़ैर, छोड़ो, ढल गया दिन, सूर्य ने ले ली बिदाई,
चाँदनी में एक कुटिया फूस की तुमने बनायी,
कल करें एकत्र फल या मूल, निर्णय हो चुका था,
मात्र जल पीकर ज़मीं पर प्यार तेरा सो चुका था ।
राम, तुम रोये नहीं थे, पर कहो, क्या सो सके थे ?
चिन्तनोर्मिल हलचलों में स्वस्थमन क्या हो सके थे ?

रात बीती, दिन हुआ, फिर दिन ढला औ रात आयी,
मास बीते, वर्ष बीते, काल ने सज्जा सजायी ।
स्वर्ण की तृष्णा कहाँ से जानकीमन में समायी ?
वह पली थी स्वर्ण में, त्यज स्वर्ण तेरे साथ आयी।
स्वर्णमृग का रूप लेकर काल उसके पास आया,
जल्पना-सा कथ्य यह मुझको नहीं है रास आया।

राम, तेरे आगमन से भीति ऋषियों की हटी थी,
वे सुरक्षित जी रहे थे, राक्षसी प्रभुता घटी थी।
कौन शोषक, सब जियें सुख से, स्वतः स्वीकारता है ?
कौन दलितों, शोषितों को प्यार से पुचकारता है ?
राम, हस्तक्षेप तेरा डाकुओं को खल रहा था,
रोष का पावक प्रबल उनके हृदय में जल रहा था ।

जानकी का रूप भी था पास तेरे न्यास उनका,
कामनाओं से ज्वलित था श्वास-प्रत्याश्वास उनका।
सोचते थे, एक हीरा क्यूँ पड़ा है भिक्षुकर में !
जंगलों की रौशनी को क्यों न ले आयें महल में !
शोषकों का अभिलषित क्यों शोषितों के पास होगा ?
क्यों सबल भी शील या शालीनता का दास होगा ?

युद्ध करना हिंस्र पशु शायद कभी स्वीकारते हैं,
स्तेय-कौशलयुक्त होकर भक्ष्य मृग को मारते हैं।
एक दिन तुम और लक्ष्मण जंगलों में जा चुके थे,
जानकी को आपदा के चिह्न भी बतला चुके थे।
छिप खड़ा पौलस्त्य था हरने किसी विधि रुपनिधि को,
चौर्य में ही शौर्य दिखला, ले उड़ा वह जानकी को।

अह्नि के अवसान पर तुम औ लखन जब घर पधारे,
देहली पर दिख रहे थे दस्युओं के कृत्य सारे।
थी दिशाएँ चुप, अनिल रुक-रुक, झिझकते, बह रहे थे,
फूल वेणी के धरा पर कीर्ण कुछ-कुछ कह रहे थे,
जानकी थी लुप्त, ऋषिगण मूक, केवल रो रहे थे,
बेबशी के घाव ढलते अश्रुकण से धो रहे थे।

एक ऋषि घायल पड़ा था मृत्यु से कुछ क्षण बचाकर,
क्या हुआ, किसने किया, उसने कहा तुमको बुलाकर,
और बोला, मृत्युमुख हूँ, दे वचन आदेश लोगे,
प्राण को भी दांव पर रख, लो शपथ, प्रतिशोध लोगे,
त्राण सीता का करोगे, अब यही हो लक्ष्य तेरा,
तुम प्रलय के ज्वार हो, अन्याय ही है भक्ष्य तेरा।

राम, तुमने की प्रतिज्ञा, ऋषि मुमूर्षु वहाँ पड़े थे
साथ, चारों ओर, लक्ष्मण और ऋषिगण भी खड़े थे
था विकट क्षण जब करुण-स्मिति छोड़ अधरों को भगी थी,
या फड़कती धमनियों के रक्त में जाकर मिली थी ।
तब तुम्हारी पौरुषेया शक्ति गर्जन कर रही थी
ख़ून में अंगार भरती प्रलयसर्जन कर रही थी ।

फिर किया आह्वान तुमने, ऋषि हज़ारों आ गए थे;
देश के, भूगोल के, हर भेद को समझा गए थे।
युद्धनैतिक, राजनैतिक, कूटनैतिक दांव सारे,
ऋषिगणों को ज्ञात थे, वे बन गए साधन तुम्हारे।
योजना भी बन गयी, कर्तव्य उसका अनुसरण था,
वालि-मर्दन, मित्रता सुग्रीब की, पहला चरण था।

दो युवक सैनिक-कला के शीर्ष पण्डित हो सकेँगे,
अननुशासित भीड़ में भी धैर्य, साहस बो सकेंगे,
एक अनुशासित चमू का रूप उसको दे सकेंगे,
क्या कभी दशग्रीव से लोहा समर में ले सकेंगे ?
ये बड़े थे प्रश्न, कोई भी न उत्तर जानता था
गर्व में दशकंठ इसको बालहठ-सा मानता था ।

एक दिन सेना उदधि कर पार लंका आ गयी थी,
शुष्क तृण के पुंज पर बन कर हुताशन छा गयी थी,
थे खड़े हनुमान, उंचासों पवन को न्योत करके,
थे खड़े सुग्रीब, अंगद सैन्य ओतप्रोत करके,
त्राण करने जानकी का शीघ्र ही दिन एक आया
जब विजय था हाथ तेरे, शत्रु का करके सफ़ाया ।

पीठ पर बैठा विभीषण स्तोत्र तेरे गा रहा था,
राक्षसों को राम-पूजन की विधा समझा रहा था,
जानकी, हो प्रेमविह्वल, वाटिका से आ चुकी थी,
मोल अपने धैर्य का तुमको निरख कर पा चुकी थी,
तब, सुना, तुम हो गए निरपेक्ष सीता से अचानक,
बात बोले तौलकर, पर बात थी कैसी भयानक !

"मैथिली, यह युद्ध तेरे अर्थ मैं करता नहीं था,
मैं तुम्हारे भाग्य या दुर्भाग्य से डरता नहीं था,
एक नारी के लिए करना नहीं संगर मुझे था,
विष-भरे लोकापवादों का भयानक डर मुझे था,
युद्ध रघुकुल का बचाने मान मैं करने चला था,
सिर उठा कर के जियें, मर जाएँ अथवा, फ़ैसला था।

शील पर तेरे लगी है लांछना, सब क्या कहेंगे ?
सिर झुकाये राजकुल के लोग सब ताने सुनेंगे;
राम सीता को लिए निर्लज्ज होकर जी रहा है,
एक राक्षस के किये उच्छिष्ट जल को पी रहा है ।
इसलिए तुम मुक्त हो, जाओ जहाँ हो मन तुम्हारा
तुम जियो, अथवा मरो, स्वीकार लो निर्णय हमारा।"

राम, रघुकुल की कहानी, स्वल्प ही, पर जानता हूँ,
मान से है न्याय गुरुतर धर्म, फिर भी, मानता हूँ ।
उस खुले अन्याय का उत्तर दिया था जानकी ने,
जल मरे अविलम्ब, यह निर्णय लिया था जानकी ने ।
किन्तु हस्तक्षेप ऋषि-मुनि-देवताओं ने किया था,
मैथिली को, हो विवश, स्वीकार तुमने कर लिया था ।

लौट तुम आये अयोध्या, बन गए राजा प्रतापी,
पुण्यरत जन थे सुखी, थे मिट गए दुर्दांत पापी,
सत्य है यदि बात, तो लोकापवादों से चतुर्दिक्
क्यों भरा था? जानकी को क्यों किये थे लोग धिक्-धिक् ?
क्यों मृषा लोकोपवादों से तुम्हारा खिन्न था मन,
जीतकर मन क्या असंभव था असत अपवाद-खंडन ?

राम, शंका, द्वेष, डर से यदि भरा जनमन रहेगा
तो अटल इस मेदिनी पर पाप का शासन रहेगा।
जब तलक शंका हृदय पर है किये अधिकार अपना
तब तलक संमृद्धि, निष्ठा, शांति होंगी मात्र सपना ।
साक्ष्य देवों का, अनल का भी, न उसको रोक पाया,
वनगमन का दंड बन कर जानकी का शोक आया ।

राम, तुमने प्रिय-जनों को दंड देना धर्म समझा,
न्याय या अन्याय का निर्णय नहीं निज-कर्म समझा
मान रघुकुल का तुम्हारे शीष पर चढ़ बोलता था,
मन तुम्हारा तुच्छतम आक्षेप से भी डोलता था।
कौन, मर्यादा किसे कहते, तुम्हें आकर सिखाता,
धर्म के गूढ़ार्थ को था कौन जो तुमको बताता ?

न्याय की तुम मूर्ति थे, सो मूर्ति बन कर जी रहे थे,
घोल कर अन्याय को मधुपर्क जैसा पी रहे थे ।
हो लखन, या जानकी, या भ्रूण उसकी कोख का हो,
आह हो, या रो रहा अंतर किसी निर्दोष का हो,
था डिगा सकता न तुमको, सत्य मर्यादापुरुष थे,
वज्र था तेरा हृदय, तुम प्रस्तरों से भी परुष थे।

राम, तेरे धर्म का था अर्थ केवल आत्मपीड़न,
था छिपा अवचेतना में दुख-भरा निज बाल-जीवन,
सौत के अन्याय जननी पर बड़े होते रहे थे,
तुम सहमकर एक कोने में खड़े होते रहे थे।
आत्म में थे तुम स्वयं कर जानकी-लक्ष्मण समाहित,
इसलिए उस ओर होता था स्वयं-पीड़न प्रवाहित।

दंड सीता को मिला, वह भूमि में जाकर समायी,
डूब सरयू में लखन ने प्राण छोड़े, शांति पायी।
तोड़ करके धैर्य अपना, तुम बिलखकर रो चुके थे,
राज्य से, या प्राण से भी, प्रेम प्रायः खो चुके थे,
राज्य दे अधिकारियों को तुम नदी के पास आये,
राह लक्ष्मण की पकड़ कर, शांत, सरयू में समाये।

राम, यह आधी-अधूरी सी कथा मैंने कही है,
तुम अकेले जानते हो क्या ग़लत है क्या सही है,
किन सुकोमल भावनाओं को दबा तुम जी रहे थे,
और कितनी वेदना को बिन दिखाये पी रहे थे।
तुम कुसुम-से थे सुकोमल, वज्रवत थी मूर्ति तेरी,
बस इसी से आज तक अक्षुण्ण चलती कीर्ति तेरी।

पति : नाम एक रूप अनेक

पति अपने प्रथम आयाम के
एक चरण में
पालक होता है।
उसकी व्युत्पत्ति है उसी शब्द–मूल से
जहाँ से पिता का,
जो देता है अन्न–वस्त्र,
करता है रक्षा,
ढोता है दायित्व,
पूरे परिवार का
संचालक होता है।
नारी आती है
भर्ता के हाथ में
होकर परिणीता,
तब नारी भार्या होती है।

पति अपने प्रथम आयाम के
इतर चरण में
साथी होता है।
पति बनता है स्थपति
करता है मदद
घरौंदा बनाने में,
उसको बसाने में,
मिलजुल कर देने स्नेह को मूर्त रूप
जिसमें प्रेम, वात्सल्य बन उभरता है
पेशानी का पसीना
आँचल में दूध बन उतरता है,
और तब कांता बनती है,
सहधर्मिणी, जाया, कुटुम्बिनी।

पति अपने प्रथम आयाम के
अन्य चरण में
उपभोक्ता होता है।
तब नारी
पालिता नहीं, साथी नहीं,
भोग्या बन जाती है,
तब उसके नाम हैं काव्यपूर्ण,
रमणी, रामा, वरारोहा, सुश्रोणि
और, कदाचित, नितम्बिनी भी।
नारी बन जाती है वस्तु या चीज़
जो होती है निष्प्राण,
भावनाविहीन,
जिसका रोना या हँसना,
हर्ष या विषाद,
मात्र एक कविता है,
असलियत से दूर
और फंतासी की उपज।

पति अपने प्रथम आयाम के
अंतिम चरण में
बन जाता है चौपाया।
जानवर।
रेपिस्ट।
गोश्त का भूखा,
ख़ून का प्यासा,
तब पत्नी न पालिता है,
न कांता है, न ललना है,
कुछ नहीं, बेशक, और कुछ नहीं,
केवल गोश्त का एक टुकड़ा है
गर्म, लज़ीज़, ज़ायकेदार।

पति के दूसरे आयाम में
अनेक चरण हैं,
गोजर की तरह।
पति (खालिस), कुलपति,
भूमिपति, पूँजीपति,
नरपति (नारीपति नहीं),
भूपति, राष्ट्रपति,
अगैरह, बगैरह।
और हाँ,
उपपति का भी है प्रावधान,
उपपति, जो होता है,
अंग्रेज़ी में पएर'मूर,
संस्कृत में जार,
हिंदी में यार,
जो पति की अनुपस्थिति में
होता है भतार।

दोस्तो, जाते-जाते
एक बात और कह दूँ,
इन दोनों आयामों का
है एक कार्टेसिअन प्रोडक्ट।
इस माजरे का हिसाब
किसी ऐसे आदमी से पूछो,
जिसके रियाज़िआत से हों ताल्लुक़ात,
लेकिन वह किसी नारी का पति न हो।

विद्वत्तमा की नगरी में कालिदास

विद्वत्तमा की नगरी में,
विवाह के इच्छुक,
पर वाद में विजित,
ख्याति की खयानत से खीजे,
पंडितों ने किया प्रण
कि अगर इस ज्ञान–गर्विता को
सबक नहीं सिखाया,
आठ–आठ आँसू नहीं रुलाया,
नहीं समझाया कि हम क्या चीज हैं,
तो, विद्वज्जनों,
हम सचमुच नाचीज हैं ।

चल पड़े वे, ढूंढने एक महामूर्ख,
जो जल्द ही मिल गया।
काट नहीं रहा था डाल
जिस पर वह बैठा था,
अलबत्ता, काट चुका था वह डाल,
गिरा हुआ था औंधे मुँह ।

कहा पंडितों ने, शाबाश
उठो, झाड़ो बदन,
चलो हमारे साथ,
करवाएंगे शादी तेरी
राजकुमारी से
बनायेंगे तुम्हें राजा का दामाद।
करना तुम्हें है एक छोटा सा काम,
जब तक न हो जाये काम तमाम,
इशारों से करना बात,
बोलना नहीं कुछ,
बिना लिए फेरे सात।

फिर हो गया शास्त्रार्थ शुरू,
विद्वत्तमा और दुल्हेराम थे रूबरू
उसने एक उँगली दिखाई तो
दूल्हे ने दिखाई उँगलियाँ दो,
उसने दिखाई तर्जनी
इसने दिखाया अँगूठा,
वह हँसी, तो, यह रूठा।
उसने दिखाया पंजा,
इसने दिखाया मुक्का,
नन्हे–से तीर पर भारी–सा तुक्का।
सभी निष्णात
पंडित–जन बैठे ही थे,
अर्थ निकालने के ख़ातिर
फ़न के उस्ताद,
मँजे हुए, पक्के शातिर।

बेबश, मूकीकृता,
विद्वत्तमा हार गयी,
पंडितों की चाल
डंका पीट, बाज़ी मार गयी।

दुल्हेराम मालामाल।
राजा के दामाद बने
पहन कर जयमाल।
पंडितों ने डाला
वर की योग्यता पर प्रकाश,
ये गुरु हमारे हैं,
यही हैं कालिदास।

दोस्तों, ये सचमुच हैं कालिदास,
अब ये बनाएंगे उष्ट्र को उट्र का अपभ्रंश
कौन यहाँ बैठा है लट्ठ लिए
करने प्रमाणित कि
उष्ट्र का अपभ्रंश उट्र है।

अब ये रचेंगे नया मेघदूत, रघुवंश
नया होगा घिसा-पिटा कुमारसंभव,
होंगे आर्गनाइज्ड दर्जनों सेमिनार,
छपेंगे इनके अनेक रिसर्च-पेपर।
प्रकृति के नियमों को ये प्राकृत में घोलेंगे
लिंग का भेद-भाव हर ज़गह टटोलेंगे
वर्ष में दो बार ज्ञान की लँगोट खोलेंगे,
एसी और ईसी में हर मुद्दे पर बोलेंगे।

जब जब

जब जब आसमान बादलों से घिर जाता है,
बारिस होती है और सड़क तालाब बन जाती है,
मुझे याद आता है वह जुमला,
जिसके मानी है
कि इस देश के किसान मौसम के साथ जुआ खेलते है।
मैं भूल जाता हूँ फ़र्क शहर और देहात में,
शेयर–बाज़ार और लेबर–बाज़ार में,
सोचता हूँ,
कि इस नल और युधिष्ठिर के देश में,
किस तबके के लोग जुआ नहीं खेलते हैं!

जब जब मैं सड़क पर अकेला चलता हूँ,
हर सौ डग पर पीछे मुड़कर देख लेता हूँ।
डरता हूँ कि कब कौन कहाँ से आकर
मुझे लूटने की मेहरबानी कर ले
और मेरी जेब की मायूसी–भरी जाँच के बाद
मेरे चेहरे पर पाँच तमाचे जड़ दे।
किसी को देख नहीं रहा हूँ
जो गवाह बने और कहे थाने में
कि इनके साथ सचमुच एक हादसा हुआ है।

जब जब मैं ट्रेन में सफ़र करता हूँ
रुकती है ट्रेन स्टेशन पर तो डरता हूँ
कब और कितने लोग घुस आयेंगे बेटिकट
और बैठ जाएँगे जमकर मेरी बर्थ पर।
अल्लाह मालिक, कहाँ तक जायेंगे
खेलते ताश, करते भद्दे मज़ाक, खाते मूंगफली,
और मुझे सलाह देते
कि ऊपर की बर्थ पर चले जाइये
बैठिये, या सोइये, शुकून से,
हम आपकी बर्थ को यहीं छोड़ जायेंगे,
घर न ले जायेंगे ।

जब जब में बाज़ार जाता हूँ,
अपनी जेब खाली कर घर लौट आता हूँ।
वे दिन गए जब कटती थी जेब,
या कोई उस्ताद रूहानी हलकी उँगलियों का जादू
बटुए पर फेर जाता था।
अब मैं अपने हाथों ही गिनता हूँ नोट
और कर लेता हूँ ख़ुद अपना बटुआ साफ़।
पिछले साठ वर्षों में हर मैदान में तरक्की हुई है।
पाकेट मारने का हुनर भी पिछड़ा नहीं है
इस तरक्की की दौड़ में।

जब जब मैं टीवी देखता हूँ,
दिखते हैं तेवर–भरे चेहरे, भंगिमा–भरे भाव,
गुमराह करते इश्तहार।

आगज़नी, क़त्ल और रेप की खबरें,
भौंड़े मज़ाक, गबन, डाके, आतंकवाद।
या, फिर, दिखते हैं,
किसी, देश के कर्णधार, महामहिम का मुँह
और उनकी पौच से उझकते उनके नौनिहाल।
मुझे अंदेशा व अचरज होता है
कि चैनल अचानक, कैसे, ख़ुद-ब-ख़ुद बदल गया,
विना सब्स्क्राइब किये एनिमल प्लैनेट कैसे लग गया!
यह सब देखकर मुझे याद आता है
कि ऑस्ट्रेलिया में कंगारू पाया जाता हैं।
पर मेरा देश गैंडों का देश है,
आदमी की खाल में भेंड़ों का देश है,
या भैंसों का देश है,
जहां खेतों में गेंहूँ नहीं उपजता,
चारा उपजता है, महामहिम भैंसौं के लिए।

जब जब मैं पढ़ता हूँ अख़बार
तो मोटे-मोटे हरुफ़ चिल्लाते हैं
कि फ़लां ज़गह एक लड़की का हुआ बलात्कार।
फिर मैं अपना चेहरा अख़बार से ढँक लेता हूँ
और सोचता हूँ,
कि जहाँ अनगिनत शोहदे साठ वर्षों से
माँ पर करते रहे हैं बलात्कार,
वहाँ अगर बेटी की आबरू लुटी सरेआम
तो क्या अचरज है!

--

कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

जब समाज निश्छंद हो गया
जन–जीवन स्वच्छंद हो गया
चिंतन प्रायः बंद हो गया
सुध खोना आनंद हो गया
कविता को घुँघरू पहनाकर
कैसे लय–ताल पर नचाऊँ?
कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

सुनो, चतुर्दिक कोलाहल है
भीड़ हुई जाती पागल है
कहीं गिरा कोई घायल है
डरा सभी का अंतस्थल है
ज्ञात मुझे भी है सब कुछ पर,
किसकी, किसको, कथा सुनाऊँ?
कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

क्या हम हैं विकाश के पथ पर,
या पशुता नाचती शीश पर?
पूर्वाग्रह से ग्रस्त निरंतर
स्वतः धन्य हैं लज्जा पीकर।
जिनका मानस तमोलिप्त हो
कहो, उन्हें कैसे समझाऊँ?
कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

सुनते कान न कातर क्रंदन
श्रव्य रहा केवल अभिनंदन
वाणी करे मात्र अभिवंदन
हृदय भूल बैठे हैं स्पंदन
पिघलाने को हृदय अश्ममय
कौन अश्रु नैनों में लाऊँ?
कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

मरा अगर आँखों का पानी,
बची, बताओ, कौन कहानी?
कौन सुने बुड्ढों की बानी
घिसी–पिटी जो हुई पुरानी।
इस उजाड़ गुलशन में, बोलो,
कैसे सुन्दर फूल खिलाऊँ?
कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

कुछ मत पूछो, प्राण विकल हैं,
धुँधले दृश्य, कि नैन सजल हैं,
गीत अमृत, या हालाहल हैं,
स्वजन मित्र, या शत्रु प्रबल हैं।
भीति–भरे अंतर्द्वंदों को

बना हास्य कैसे दिखलाऊँ?
कैसी कविता तुम्हें सुनाऊँ?

चुन दो दरख़्त, फुनगी पर चढ़ जाऊँगा

कविते,
तुम मेरे शतशः अनुनय के बाद भी
चाहती नहीं हो कि बैठो पृष्ठ-पर्यंक पर,
संभवतः इसलिए कि मैं अनुरोध करता हूँ
संस्कृत-सी भाषा में,
जिसमें पुरातन से प्रेम स्वतः परिलक्षित है,
पर तुम हो नूतन, अद्यतन, अछिञ्जल।

लेकिन, यक़ीन करो, करने तुम्हें खुश,
मैंने शुरू कर दिया है सीखना उर्दू,
जिससे आशिक़ी ख़ुद-ब-ख़ुद बरसती है।
शायद, तुम चाहती हो भीगना उस फ़ुहार में
जिसे पाकर ज़मीन गीली तक नहीं होती,
लेकिन फ़िज़ा डूब जाती है एक सोंधी–सी ख़ुशबू में।

कविते,
तुम बांधना नहीं चाहती हो पैरों में नूपुर,
बंधना नहीं पसंद तुम्हें छंदों के बंधन में,
घर के कोरस तुम्हें रास नहीं आते,
तुम्हें पसंद नहीं रहना कमलकोष पर
बन कर किंजल्क, कोमल पँखुड़ियाँ के बीच।
मिलना चाहती हो तुम कहीं स्वच्छंद,
ख़ुद अपने छंद बन,
खेतों-खलिहानों में, या किसी कैफ़े में,
और रखना चाहती हो उतना ही रिश्ता,
कि मेरे जीवन में दो ही घड़ियाँ हों
एक तेरे आने के पहले,
और दूसरी तेरे जाने के बाद।

हाँ, तुम्हें ग़िला है मेरी जुबाँ से,
लफ़्ज़ों के संयत इश्तेमाल से,
लेकिन अगर तुम थिरक उठती हो
सुनकर वे जुमले
जो होस्टलों में गूँजते हैँ,
तो में आगे से स्लैंग्स में ही बोलूँगा,
करूँगा फ़र्क नहीं क्या शिष्ट क्या अशिष्ट,
यदि है यही तुम्हारा इष्ट।

तुम कहती हो तो घी गोबर में मिलाऊँगा,
चुन दो दरख़्त, फुनगी पर चढ़ जाऊँगा।

सबेरा

रात में धरती
आसमां से मिलती है।
सूरज जनमता है
गोल–मटोल लाल।
उसके आते ही
चिड़ियाँ गातीं है सोहर
भागते हैं छौने इधर–उधर
जगाने सबको, देने सन्देश
कि चाँद के भाई हुआ है,
चाँद से भी चमकदार, भरा–पूरा।

चाँद, जिसका मुँह टेढ़ा रहता है
तक़रीबन हमेशा,
महीने में उनतीस दिन,
देखकर सूरज को,
उदास हो जाता है।
चाँद के सारे दोस्त
जो रात की महफ़िल में
सितारों की तरह रौशन थे,
गुम हो जाते हैं,
छोड़ जाते हैं उसका साथ,
जैसे उसे कभी जानते न हों।

आसमान हँसता है,
धरती शरमाती है,
छुप जाती है घने पेड़ो की ओट में,
पर उसका खिला चेहरा
खेलता है आँख–मिचौनी।
चंचल पवन करता है ठिठोली,
शायद उनका रिश्ता देवर–भाभी का है।

––

रेखा

मैं रेखा हूँ,
रेखा, यानी लकीर।

मैं जबतक पड़ी हूँ तुम्हारे नीचे
तभी तक तुम विशिष्ट हो,
ध्यातव्य हो, रेखांकित हो।
पर ध्यान रखना,
जिस दिन मैं खड़ी हो जाऊँगी उठकर,
बन जाऊँगी विराम,
विराम तुम्हारे अधिनायकत्व पर,
फिर तुम विशिष्ट नहीं रह पाओगे।

जानते हो,
अगर मैं तिरछी हो जाऊँ,
तो तुम बँट जाओगे,
या रह जाओगे टूट कर अंशमात्र
एक बँटा दो भर।
एक मैं,
जबतक खुदी से नीचे रहती हूँ,
तुम्हारी ख़ुदी छत पर बैठकर
हुक़ूमत करती है।

और भी सुनो,
मेरे तिरछी होने का अर्थ,
मैं तुम्हारे आगे रहूँ या पीछे,
तुम रह जाओगे एक अस्तित्वमात्र
जिसका महत्व 'या' के
परवर्ती अथवा पूर्ववर्ती सा होता है,
विस्थाप्य और वहुधा परिहार्य।

मैं जोड़ती भी हूँ
एकाधिक अस्तित्वों को।
में समास बनाती हूँ,
विलीन करके खुद का अस्तित्व
कुटुम्बिनी कहलाती हूँ।
तुम्हें
केवल तुम्हें नहीं,
तुम लोगों को मूल्य, अर्थ
और प्रायः विशेषार्थ देती हूँ।

लेकिन तुम नहीं मानोगे
कि कुटुम्बिनी से कुटुम्ब बनता है।
तुम्हारे संबंधों का व्याकरण
झूठ–साँच गढ़ता है।
पर याद रखना,
जिस दिन मैं विग्रह पर उतर आऊँगी,
तुम सब अकेले खड़े मिलोगे।

मेरे भ्रूभंगों से तुम कट कर रह जाओगे,
घर से, बाहर से, पूरे संसार से।

पापोपनिषद्

शांतिपाठ के बाद शिष्य ने पूछा,
ऋषिप्रवर, बताएँ, पाप क्या है?
क्या है सत्य, क्या है असत्य?
इस पर आपका क्या फ़ैसला है?

इस महाप्रश्न पर गुरु हो गए गभीर,
कुछ क्षण बाद घन-तिमिर को चीर,
ओतप्रोत करती चतुर्दिक पल भर को
छिटकी बिजली की पतली-सी लकीर।

चपला की चमक, गह्वरागत निनाद में
शिष्य ने देखा और सुना यह पापोपनिषद्।

स्वार्थपर मौन पाप है।

अगर तुम उत्तर जानते हो,
वह सर्वतोभद्र है, सही है, यह मानते हो,
तो, तुम्हारी चुप्पी समाज को अभिशाप है,
अपने स्वार्थ के लिए मुँह बंद रखना पाप है।

मानता हूँ,
तुम्हारी आवाज़
घुल जायेगी घनमंडल में।
पर रखना याद,
जीवन क्षणिक है।
मृत्यु अंतिम सत्य है,
पतन अंतिम सत्य है,
तमस अंतिम सत्य है
अज्ञान अंतिम सत्य है।

जो स्वयंभू हो,
स्वतः आधारित हो,
स्वतः पालित हो,
स्वतः फैलता हो,
मध्यतः उद्वेलित-सा दिखकर भी,
अंततः स्वतः स्थापित हो,
वही चिरंतन है,
अजन्मा है,
अविनाशी है,
अविकारी है,
सत्य है।

तुम्हारी आवाज़ सत्य नहीं हो सकती,
वह एक आदर्श है।
सत्य 'है', आदर्श 'होना चाहिए' है।
सत्य की धूल से वहुधा
आदर्श ढँक जाता है;

तब खुद अपना ही चेहरा
खंडित नज़र आता है।

आदर्श विस्थापित हो जायेगा
सत्य से, मौन से, मृत्यु से,
पतन से, तमस से, अज्ञान से,
या उद्दाम कोलाहल से।
तुम्हारी आवाज़
नक्कारखाने में तूती की आवाज़ है।

पर स्मरण रहे,
जीवन क्षणिक है,
वह बिजली की चमक है।
पर वही स्फुलिंग
परिवर्तन का घटक है।

जियो, शिष्य, जियो,
प्रज्वलित होकर मुहूर्तमात्र,
न कि धूमायित
जीवस्व शरदः शतम्।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

समुद्रोपनिषद्

सुदूर दक्षिण –
जलनिधि के तट पर –
एक वृद्ध, तेजोमय,
दे रहा था अपना अंतिम प्रवचन।
सुनने परशुराम का समुद्रोपनिषद्,
सामने बैठे थे अगणित श्रोतागण।

तर्जनी से इंगित कर वेलाकुल समुद्र को,
बोले परशुराम, देखते हो यह पारावार ?
कितना विशाल, सशक्त अपरिमित है!
चाहे तो लील ले समग्र धरणी को।
क्या है समुद्रतट ?
तट की परिभाषा
मात्र लीला है जलधि की।
जहाँ पर रुक गए, वहीँ तक तट है।

किन्तु यह लीला, यह सीमा स्वयमारोपित,
देती है निरंतर जनजीवन को उपदेश,
ओ सबल, ओ सशक्त,
रखना शक्तिप्रयोग मर्यादित,
रक्षण है, भक्षण नहीं, शक्ति की परिभाषा,
यही महासागर का मानव को है सन्देश!

मेरी ओर देखो,

मैं था अनन्य पितृभक्त,
पिता की आज्ञा पर माँ की हत्या की।
पितृभक्ति है वरेण्य,
किन्तु वरेण्य बन जाता है निंदनीय
लाँघ कर सीमा, विखंडित कर मर्यादा।

मेरी ओर देखो,

मैंने प्रतिकार किया क्षात्र अन्याय का,
लेकर उद्देश्य कि करूँगा खड्ग को सीमित,
मैं ख़ुद निस्सीम हुआ।
किया निर्मूल क्षत्रियों को इक्कीस बार।
वह प्रतिकार पूर्णतः अमर्यादित था,
वह था अन्याय का अन्याय से प्रतिकार,
काले कम्बल को काजल से रँगकर।
ऐसा प्रतिकार कभी मत करना।

मेरी ओर देखो,

मैंने उजाड़े अनेक पुर, अनेक ग्राम,
बना दिए कुंड अनेक क्षात्ररक्त के,
शायद कहीं दिखता था जलपूर्ण सर,

सारे सर रोहित थे, लोहित भरे हुए।
फिर मुझे आया ध्यान, कृत्य यह हेय है,
मानव की तृषा को केवल जल ही पेय है,
रक्त तो केवल पिशाचों का प्रेय है।

तब मैंने सोचा नए गाँव मैं बसाऊँगा,
हर बसोबास में जलपूर्ण सर खुदाऊँगा।
साफ हुए जंगल, हजारों पुर बन गए,
नर के कल्याण हित जंगल उजड़ गये।
चलने को सड़क है, पर रुकने को छाया नहीं,
देखते हो, बरसों से पावस है आया नहीं।
खेत मरुभूमि हुए, आतप प्रचंड है,
यह सब मर्यादातिक्रमण का दंड है।

अत एव मेरा यह अंतिम निष्कर्ष है,
मर्यादापालन से होता उत्कर्ष है।
शक्ति का दुरुपयोग केवल अनर्थ है,
अति के प्रति प्रेम पूर्णरूपेण व्यर्थ है।

हरस्व भगवन मनुष्याणां भ्रांतिः,
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

दाम्यत दत्त दयध्वम्

(1)

असुरों, मनुष्यों, देवताओं ने
की प्रजापति की बहुत-बहुत मिन्नत।
पूछा, बताएँ, क्या है हमारा श्रेय,
कैसे हम होंगे सफल, सुखी, उन्नत?

कहा प्रजापति ने, कल सुबह आना,
पर अपना एक एक नेता चुन लाना,
हर दल के नेता को एकल प्रकोष्ठ में,
मैंने सोचा है वीजमन्त्र बतलाना।

आ गए अगले दिन सारे के सारे,
प्रजापति भी ठीक समय पर पधारे।
देवों के नेता को अंदर बुलाया
मंत्र दे 'द' का, पूछा, क्या समझ आया?

बोला देवनेता, यह मन्त्र तो महान है,
अपनी इन्द्रियाँ हैं चपल, हमें यह भान है।
दमन वासनाओं का, दमन भावनाओं का
दमन इन्द्रियों का, मंत्रार्थ यह प्रमाण है।

प्रजापति बोले, गच्छ, दाम्यत, दाम्यत
मनोविकाराणि, न भोगानि काम्यत।

तब नरनेता घुसा प्रकोष्ठ के अंदर
पूछा प्रजापति ने, 'द' का मंत्र देकर,
बोलो मानव, तुम्हें क्या समझ आया?
'दत्त', 'करो दान', अर्थ नर ने बतलाया।

हाँ, संग्रह, अधिकार, वस्तुमोह, संचय,
इन्ही प्रवृत्तियों से है मानव पतन का भय,
अतः, बोले प्रजापति, दीनेभ्यो दीयताम्
न संग्रहणेन, वरं दानेन प्रीयताम्।

फिर प्रजापति ने असुरनेता को बुलाया
तेरा मंत्र 'द' है, कहो क्या समझ आया?
बोला असुर, 'दया' ही इस मंत्र का अर्थ है।
दयाभाव में ही असुरजाति का उत्कर्ष है।

बोले प्रजापति, गच्छ, सततं 'दयध्वम्'
सर्वजीवेभ्यो अक्रूरताम् कुर्वध्वम्।

(2)

सारी यह बात छपी, समाचार बन गयी
बात मुझ 'इतर' की सीठी-सी छन गयी।
देव, असुर, मनुज, सभी चर्चा के विषय थे,

इडियट से इलियट तक उपनिषदमय थे।

मैं भी गया अंदर था 'द' का मंत्र पाने को
दस प्रतिशत कोटे पर अपना दाय लाने को।
पूछा मुझको भी था 'द' का अर्थ क्या होगा?
बोलो आरण्यक, तेरे लिए वह भला होगा।

मैंने कहा था, 'द' का अर्थ दारू है,
फ़र्क नहीं पड़ता, इंगलिश या बाज़ारू है।
प्रजापति बोले थे, भूलो 'दाम्यत, दत्त, दयध्वम्'
जाओ घर, प्रतिदिन पियध्वम् पियध्वम्।

सभा हो, सिलेक्शन हो, चाहे सेमिनार हो,
सारे निर्णय का एक बोतल पर भार हो।
दारू पर निछावर आरण्यक का तंत्र हो।
'पियध्वम् पियध्वम्' तुम्हारा वीजमंत्र हो।

इतर = जो सुर, असुर, मानव से अन्य है; देवेतर, असुरेतर एवं मनुष्येतर

कुँवरि का भाग्य

बचपन में सुनी नानी से यह कहानी थी
बहुत दिन पहले,
एक राजा था, व रानी थी।

रानी के बेटी हुई, नाम रखा देवयानी,
कुछ समय बाद देवयानी हुई सयानी।

राजा राजकाज में उलझे रहते थे
बेटी के व्याह की बात न करते थे।

अनव्याही बेटी सौ मन भारी होती है
कौन माँ यह भार लिए चैन से सोती है।

आखिर रानी ने हज्जाम से की बात
ढूंढो बर कोई, बिटिया के हों पीले हाथ।

नाई ने धोबी से तब सोचा लेनी सलाह,
धोबी ने 'कमीटी में तीन मेंबर हों' की चाह।

भिस्ती की यारी उस दिन काम आ गयी
जब उसकी राय मित्रमंडली को भा गयी।

रच गया स्वयम्बर, तीनोँ के पुत्र आ गए,
बन राजकुंवर सारी सभा पर छा गये।

राजा ने हुकुम दिया माला पहनाने को
बेटी जिसे चाहो, चुनो, दूल्हा बनाने को।

कुँवरि के भाग्य में धोबी का योग था
उसी की तरफ माला गयी, यही संयोग था।

बज उठी शहनाई, चिंता मिटी रानी की,
दौड़-दौड़ धोबन ने बहू की अगवानी की।

रोटी

रोटी, गरम गरम,
गोल-गोल, फूली हुई।

जब-जब मैं तुम्हारी तरफ देखता हूँ
मेरे जेहन में आ जाते हैं सिलसिलेवार अक़्स,
गेंहू का पिसकर आटा बनना,
आटे का गुंधना, टुकड़ों में बँटना,
बेलन से बिलना, तवे पर चढ़ना,
हर मिनट बाद, सिंक, पहलू बदलना,
फिर तवे से उतर बंद होना देग में,
ऊमस भरे देग में।

ओ रोटी,
मैं तेरे पीछे भागते हुए,
कुछ तेरे जैसा ही हो गया हूँ।
मुझे अद्वैत-बोध होता है;
मैं तुम हूँ, या तुम मैं हो
हमारा द्वैत-भाव माया है, भ्रम है।

तेरे लिए भागकर,
हाँ, तेरे लिए भागकर,
मैंने छोड़ा
माँ का आँचल,
कटोरा दूध-भरा,
बचपन के दोस्त
पिछवाड़े की अमराई,
पीपल की छाँह,
पलाशों के जंगल,
नदिया की रेत,
और भी बहुत कुछ।

यान्ति देवव्रताः देवान,
. . .
यान्ति मद्याजिनोपि माम्।

ओ रोटी,
तुमने बड़ी अच्छी की गीता की व्याख्या।
या कि तुम वही हो
जिसने दिखाया था विराट रूप,
या जिसकी अनुभूति बोल उठी थी
अन्नमेव ब्रह्म।
तुमने मुझे कराया अनुभूत
अहमन्नम् अहमन्नम् अहमन्नम्।

पगली का प्रेमगान

मेरी पलकें जो है मुँदती तो फ़ना होती है
आँख खुलती है तो फिर लौट के बसती दुनियाँ
मेरे जेहन में न जानें क्यूँ ये आता है ख़याल
अक़्स तेरा मेरे ख़्वाबों ने तराशा होगा।

नाचते आसमाँ पै जो थे हज़ारों तारे,
पहन के झिलमिल सुर्ख-ओ-नीले लिबाश
गुम हुए ढँक के कहीं अपने-अपने चेहरे
मेरी पलकें जो मुँदी, रात उन्हें लील गयी।

मैंने देखा कि मैं-तुम हम-बिस्तर हैं,
चूमते हो तुम मुझे आगोश में लिए हुए
पागल हो गये हो तुम, या फिर मैं दीवानी,
अक़्स तेरा मेरे ख़्वाबों ने तराशा होगा।

ढह रहीं टूट के ज़न्नत की दर-ओ-दीवारें,
आग है सर्द हुई ख़ौफनाक दोज़ख़ की,
शैतान, फ़रिश्ते, मुझे छोड़ो, दफ़ा हो जाओ
मुंदकर मेरी पलकों ने दुनियाँ को लील लिया।

ऐसा लगता है, तुम लौट आये मेरे पास,
वादा निभाने में बड़ी देर कर दी तुमने,
मेरे हुश्न के साथ तेरी याद भी हुई धुँधली,
अक़्स तेरा मेरे ख़्वाबों ने तराशा होगा।

काश, किया होता तूफ़ान-बगूले से इश्क़,
बहार आती है तो वे भी आ जाते हैं,
लेकिन मैंने मूँद लीं हैं भारी पलकें अपनी,
सारी दुनियाँ घुप अँधेरे में डूब गयी।
अक़्स तेरा मेरे ख़्वाबों ने तराशा होगा।

सिल्विया प्लैथ (Sylvia Plath) की मैड गर्ल'स लव सॉन्ग (Mad Girl's Love Song) का भावानुवाद;
देबदास छोटराई द्वारा उड़िया में भी अनुवादित

कोलाज़

बूचरखाने को जाती
ट्रक पर लदी गायें;
कुछ खा रहीं सूखे पुआल
और कुछ कर रहीं पागुर;
भविष्य से बेखबर
बीच सड़क पर।

दिख रही है पीठ उस साये की
जो अकेला जा रहा है
सर्पिल सड़क पर
मिलने अदृष्ट में;
आगे क्षितिज छूती सड़क की लकीर
पीछे सुनसान विगत कल की छाँह
जो निकली थी अरण्य से
पगडंडी बनकर अतीत में।

आतशी लपटों में लिपटी
जल रही है कॉलिज की इमारत,
सामने खड़ी है भीड़
चीखते रहनुमाओं की;
जला डालेंगे सबकुछ
नहीं, तो, बात लो मान;
मांगें हमारी बेशक वाज़िब हैं।
बोलते हैं बैनर
यह कॉलिज हमारा है
दीगरों का दाखला
हमें हरगिज़ मंज़ूर नहीं।

तीन सागरों से उठकर
सुनामियों ने हाथ मिलाये,
ढँक लिया पूरे मुल्क का नक्शा;
ऊपरी कोने पर
गर्द-ओ-गुबार है,
गर्दिश है, चीख है,
बचाओ-बचाओ की करुण पुकार है;
तैर रहे आसमान पर
काले बादल और गड़गड़ाते एरोप्लेन।

दुकानें लगी हैं,
अनाज़ की, कपड़ों की,
दूध-से सुफ़ेद मर्मरी टाइल्स की,
बिन-पढ़े शिक्षा की,
बिन-किये प्रतीक्षा की,
मंत्र तंत्र, दीक्षा की,
प्रियकर समीक्षा की,
दाय की, न्याय की,
ढाने सितम और करने अन्याय की,

जोरू, जमीन, ज़र की,
सच्ची झूठी खबर की,
रात के चारों प्रहर की।
एक बड़े बोर्ड पर
साफ़–साफ़ लिखा है:
"सब–कुछ बिकता है"।

एक वृद्धा,
सौ पर एक दुःशासन।
सौ करोड़ क्लीवों की
उमड़ती सभा में
सरेआम चीरहरण।
बलात्कार शीलहरण।
चीत्कार।
हे कृष्ण, हे कृष्ण
अनुगुंजित भूमण्डल।
निष्फल।
–––––

जिजीविषा

मैनें सूरज से पूछा,
कब तक चलोगे?
उत्तर मिला
शाम तक
जो आने ही वाली है ।

मैंने चिड़िये से पूछा
कब तक उडोगी?
उत्तर मिला,
कुछ देर और,
पास के पेंड पर मेरा बसेरा है।

मैंने दीपक से पूछा
कब तक बलोगे?
उत्तर मिला,
सुबह तक,
या तब तक
जब तक स्नेह सूखा नहीं।

मैंने आग से पूछा
कब तक जलोगी?
उत्तर मिला,
जब तक ईंधन चुक नहीं जाते।

मैंने सांसों से पूछा
कब तक यूँ ही आती–जाती रहोगी?
उत्तर मिला,
जब तक तुम मुझे बुलाते रहोगे,
सब्जबाग नित नये दिखाते रहोगे,
आती रहूँगी मैं धर नित नए वेष,
जनम पर जनम तुम लेते रहोगे,
हर जनम मेरे चहेते रहोगे।

बुधुआ मज़दूर

बुधुआ का बाप मरा होकर बीमार
बुधुआ के सर आया किरिया का भार।

पंडित ने पकड़ा दी लम्बी फेहरिस्त
बुधुआ बाजार चला लेकर के लिस्ट।

साथ महाजन लेकर देने सहयोग
कर्ज मिटा सकता निर्धनता का रोग।

किरिया संपन्न हुई तेरह दिन बाद
भोज जिमा लोगों ने ले–लेकर स्वाद।

रुपये झर भागे ज्यों मुट्ठी से रेत
दो हफ्ते बाद बिके बुधुआ के खेत।

बँधकर रिवाज़ों से, होकर मजबूर
ईंटों के भट्ठे पर बुधुआ मज़दूर।

बुढ़िया

बच्चों की जूठन औ खुरचन की भात
बुढ़िया की घर में बस इतनी औकात।

गुदड़ी से तन ढककर कटती है रात
छप्पर है रिसता जब आती बरसात।

पछुआ है पूस की दिखाती एक खेल
बुढ़िया की टुड्डी औ घुटनों का मेल।

कुतिया जब करती पैताने आराम
सर्द हवा करती बुढ़िया को बदनाम।

गाली के सालन में आँसू के झोल
बुढ़िया की बिपदा के पोल रहे खोल।

मरती न जीती है करती हैरान
बहू कहे, बुढ़िया की तोते में जान।

--

किंवदंती है कि डायन की जान शरीर में नहीं वरन और कहीं (जैसे तोते में) होती है ।

मत दो मुझे निर्वाण के उपदेश

क्या दिया मैंने उस गाँव को
जिसकी हवा में मैंने पहली साँस ली थी
जिसकी ज़मीन गलीचे सी नरम थी
जिस पर चलते मेरे घुटने न छिले थे
जहाँ मैंने बोलना सीखा तुतला-तुतलाकर!

क्या दिया मैंने उस जराजीर्ण स्कूल को
जहाँ मैंने सीखा ककहरा,
बीसी तक पहाड़े
ए से एपल और बी से बुक,
जो अब भी काम आते हैं!

क्या दिया मैंने उस कॉलिज को
जिसने दी मुफ्त में शिक्षा
और पहला वजीफ़ा,
जिससे खरीदी किताबें अब भी मेरे पास हैं
यादगार के तौर पर !

क्या दिया मैंने लौटाकर उस शिक्षक को
जिसने सैकड़ों घंटे मुझपर लगाये
पढ़कर मूक सूखे ओठों के हरुफ़
जिसने मुझे नाश्ते भी कराये
निःशुल्क, अनमोल, विना मोल!

क्या दिया मैंने लौटाकर उस भाषा को,
जिसकी कविताओं ने स्पंदन जगाये
जिसकी कहनियों ने मेरा चरित्र सिरजा,
जिसके मुहावरे गहराई तक उतर गए हैं,
करती मुझमें आत्मज्ञान का संचारण!

हाँ, मैं फिर जनम लूँगा,
बार-बार, एक नहीं, सौ जनम लूँगा
चुकाने ऋण जो मुझ पर है,
यह मेरा निजी मामला है,
बाबाजी, मत दो मुझे निर्वाण के उपदेश।

माँ कह एक कहानी

माँ कह एक कहानी।

ले, सुन हठी मानधन, प्यारे
उस दरिया के एक किनारे
हरे-भरे थे गाँव हमारे।

आज वहीं फैक्टरी लगी है
दूषण की वह बहन सगी है
देखो, जल में आग लगी है।

नालों से आ गंदा पानी
मिलता गंगा में मनमानी।
माँ कह कोई और कहानी।

"भारत बंद" पुकार किये हैं,
धरना कई हजार दिए हैं,
सौ घायल में चार जिए हैं।

कह, माँ, क्यों होती मनमानी?
इन लोगों ने क्या है ठानी ?
नहीं सुनूंगा सड़ी कहानी।

सुनते नहीं कहा तुम मेरा,
यह सब राजनीति का फेरा,
देश बना लुच्चों का डेरा।

जाकर होमवर्क अब कर ले,
फिर थैले में पुस्तक धर ले
टिफिन और पानी भी भर ले।

जीवन बस में आनी-जानी,
अंट-शंट बकते हैं ज्ञानी
चोर-लुटेरे राजा-रानी।

प्यारी माँ, सच्चाई जानी,
हठ न करूँगा, कहो कहानी
ले लूँ बोतल भर कर पानी।

समीक्षा

पंडित का बेटा
अपने बाप की तरह पाखंडी नहीं है
सारी लड़कियों को
एक ही नज़र से देखता है।

बाघ नहीं करते,
छुआछूत का विचार-,
गाय को, बकरी को
पंडित को, परीहा को,
ऊँच को, नीच को,
एक ही नज़र से देखते हैं,
एक ही दाढ़ से चबाते हैं।

बाढ़ नहीं करती धरम के सवाल,
झोपड़ी और महल में फ़र्क,
फ़सल भरे खेतों और ऊसर में अंतर,
सबको समानरूपेण गले लगाती है,
अपने साथ ले जाती है।

धूमिल ने कहा था
मोची के लिए हर आदमी
एक जोड़ी जूता है।
सच ही कहा था।

नेता के लिए हर बंदा एक वोटर है।
हर घटना मसाला है,
चाहे वह बाढ़ हो, गौहत्या हो, गौरक्षा हो,
महामारी हो, कार्नेज हो, क़त्लेआम हो,
ईद हो, मुहर्रम हो, दिवाली हो।

और एक हम हैं
ख़्वाहमख़्वाह, कटे जाते हैं
ग़लत और सही की करने समीक्षा।

पुनर्जन्म

हम मरकर इंतज़ार नहीं करते
किसी लेखा-जोखे का,
तैर कर कुछ अरसे तक,
हवा में इधर-उधर,
किसी बच्चे को डराकर,
किसी सुंदरी पर आकर
कुछ करिश्मे दिखाकर
हम लौट आते हैं
अपने कर्मों, संस्कारों
व अपूर्त अभिलाषाओं को साथ लिए
चौरासी लाख में से किसी एक योनि में।
*
और
यह अटल सत्य है
मानव के लिए, दानव के लिए,
पशु, पक्षी, कीट पतंग के लिए भी।
**
तभी तो कुछ लोग,
भूँकते हैं, गुर्राते हैं,
नज़र-ए-इनायत के लिए पूँछ भी हिलाते हैं।
जिसका खाते हैं उसी का गाते हैं।
दरवाज़े से ग़र घुसें दरवेश
तो, बेशक, उसे भी काट खाते हैं।
मौक़ा ग़र मिल जाये तो सड़कों पर
बेख़ौफ़, बेफ़िक्र इश्क़ फ़रमाते हैं।
***

घास

घास न हँसती हैं, न रोती हैं।
वह तो चरी जाने को होती हैं।

घास बकरे के लिए चारा है
घास गायभैंसों का सहारा है-
बकरे क्या ख़ुद के लिए जीते हैं?
बछड़े क्या जीभर दूध पीते हैं-?

धरमधरम के बीच झगड़ा है-
सदियों से चलता यह रगड़ा है
गोश्त या दूध उन्हें खाना है?
किस तरह फ़ायदा उठाना है?

रगड़े पर पलते सब नेता हैं,
झगड़े के वही तो प्रणेता हैं,
गोश्त औ दूध खूँ बनाते है
नेता की प्यास खूँ बुझाते हैं।

घास इन लफड़ों में न पड़ती है
खाती है धूप, खूब बढ़ती है।
हवा पीकर खाना बनाती है
रौंदो, पर उफ़ नहीं कह पाती है।

घास हैं हम, हमें कुछ न कहना है,
धरती से चिपट, हरी रहना है।
बकरे और नेता फलें फूलें
रौंदना या खाना हमें मत भूलें।

मरी गाय

आज सबेरे मैंने देखा,
उस कोने पर सड़ककिनारे-
मरी पड़ी है एक गाय,
फूला है उसका पेट,
फेन सा सूख चुका है
निकल पेट से पानी,
उस पर भिनभिन करती-
कुछ उड़ती, कुछ बैठी दल में
निपट घिनौनी, जी उबकाती
निडर मक्खियाँ।

घास नहीं है।
बड़े पार्क बाड़े के अंदर
हरे हरे हैं, जी ललचाते,
लठ्ठ लिए दरवान खड़े हैं।
पार्क हरे हैं,
शामसुबह हम वहां टहलते-,
पार्क आदमी की ख़ातिर हैं।
पशु है गाय,
गाय का घुसना किसी पार्क में
भूख मिटाने, मान्य नहीं है।

दूरदूर- तक
बदल गए मैदान शहर में।
भूखी गाएँ
कूड़ों पर मुँह मार रही हैं;
पॉलीथिन के थैले हैं कूड़े के अंदर,
जिसमें दूध भरा बिकता है।

दूध हमारे लिए निकलता,
बच जाते हैं पॉलीथिन के खाली थैले
उसकी ख़ातिर
जिसने हमको दूध दिया था।
भूखी गाय करे क्या आख़िर,
आग पेट की जो न कराए,
है मज़बूर निगलने थैले पॉलीथिन के।

भरता पेट, मग़र वे थैले खाद्य नहीं हैं,
विष का करते काम, फूलता पेट गाय का,
कुछ घंटे छटपट करती है,
मृत्यु जीतती, गाय हार कर मर जाती है।

ऐसे में ही हारी होगी,
वो बेचारी
जिसकी लाश पड़ी है, देखो
उस कोने पर सड़ककिनारे।-
==========

प्रे टुगेदर

प्रे टुगेदर,प्रे टुगेदर, प्रे टुगेदर
कुछ न मिलता व्यर्थ में ज़द्दोज़हद कर।

हाथ पर रख हाथ जो बैठे रहे हैं
या कि मय आराम यूँ लेटे रहे हैं
भाग्य के बल आज सब कुछ ले चुके हैं
कर्मबल के सौ नसीहत दे चुके हैं
काम कर हमने कमाए दर्द, ठोकर
प्रे टुगेदर,प्रे टुगेदर, प्रे टुगेदर।

जो महंथी कर रहे हैं वे बड़े हैं
भक्तजन लंबी क़तारों में खड़े हैं
आज चरणामृत नहीं बेमोल मिलता
आज चमचों को रतन अनमोल मिलता
यार मेरे, श्रम नहीं, चमचागिरी कर
प्रे टुगेदर,प्रे टुगेदर, प्रे टुगेदर।

मत बुझाना आग

मत बुझाना आग।

भाग्य है अच्छा, तेरा बच गया घर,
आग ने चुन ली तेरी चाही डगर,
और अब तेरा पड़ोसी हो विकल

पीटता रह जायेगा सर साल भर।

भावनाओं की तरफ़ मत भाग,
मत बुझाना आग।

मांग प्रभु से एक ही वरदान,
देश हो कंगाल, या शमशान
हो तेरे घर अन्न का भण्डार,
फूलताफलता रहे व्यापार-,

यूँ तुम्हारे भाग्य जाएँ जाग,
मत बुझाना आग।

देशहित की बात करना छोड़ दे,
मूर्खता को दूर से कर जोड़ ले,
इस धरा को मां समझना है भरम,
भोगता है तू यहाँ अपना करम।

देख, चादर पर लगे ना दाग,
मत बुझाना आग।

व्योमवासी तू, झरे तेरे सुकृत,
हो धरा पर भोगने निज कर्म कृत
कर्मक्षय पर व्योम में फिर जाएगा
मेदिनी से कुछ न ले जा पाएगा।

भरम हैं विद्वेष औ अनुराग
मत बुझाना आग।

चिड़ियों का जोड़ा

चिड़ियों का जोड़ा
तृण की तलाश
झाड़ी में नीड।

चिड़ियों का जोड़ा
चुग्गे की खोज में
चूजों की चींचीं।

चिड़ियों का जोड़ा
बच्चे सब उड़ गये
खोंता वीरान।

चिड़ियों का जोड़ा
क्षितिज पर निगाहें
सूनी, सपाट।

चिड़ियों का जोड़ा
यादों में गिरफ़्त
दोनों एकाकी।